ISSN: 2583-5149 | An online refereed and peer reviewed journal | Frequency: Biannual

अभिनवधारा
ABHINAVDHARA
International Journal of Innovation in Indic Studies
www.ijiis-org.com

Vol-3, Issue-2 | July 2024

श्रीमद्भगवद्गीता के आलोक में भारतीय समाज दर्शन का स्वरूप विमर्श

हलधर भारद्वाज
संस्कृत विभाग,जामिया मिल्लिया इस्लामिया

शोधसार-

श्रीमद्भगवद्गीता किसी भी विपश्चित मन को अपने ज्ञानगौरव से परमानन्द की प्राप्ति कराने वाला विश्व का सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ हैं।

यह ग्रन्थ भारतीय संस्कृति का एक ऐसा ग्रन्थ है जिसमे सम्पूर्ण वैदिक व लौकिक वाङ्मय का सारतत्त्व निहित है। जैसा कि गीता महात्म्य मे वर्णित है -

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः ।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत् ॥[i]

इस संसार मे पारलौकिक व इहलौकिक ज्ञान के जितने भी विषय विद्यमान है ,उन सभी के साधन व उपाय श्रीमद्भगवद्गीता के अन्तस्थ मे विद्यमान है। सामाजिक, अध्यात्मिक, मानसिक चेतना, संसार व जीवन की ठीक-ठीक वस्तु स्थिति की समझ का अध्ययन, ईश्वर प्रणिधान का ज्ञान, तथा आत्मोद्धार का विवेचन ज्ञान के इस भांडागार मे सुलभता से संरक्षित है, अतः इस सारस्वत्य कोश से प्रस्तुत शोध-पत्र में "श्रीमद्भगवद्गीता के आलोक में भारतीय समाज दर्शन का स्वरूप विमर्श" विषय को प्रस्तुत किया गया हैं।

किसी भी दर्शन की परिकल्पना वास्तविक रूप से समाज के लिए ही है। यदि समाज नहीं है तो दर्शन का भी कोई औचित्य नहीं रह जाता है। अतः प्रत्येक दार्शनिक अवधारणा समाज कल्याण अथवा समाज के हित के लिए ही निर्धारित है। यद्यपि हम दर्शन को विभिन्न कोटियों में बाँटकर देखते हैं तथा प्रत्येक दर्शन की अपनी-अपनी विचारधाराएँ अथवा दार्शनिक सिद्धांत भी अलग-अलग है लेकिन इन विचारधाराओं को अथवा सिद्धांतों को अंगीकृत करने वाले समूहों को समाज ही कहा जाता है अतः समाज के लिए जीवन क्या है? जीवन की पद्धति क्या है? जीवन का उद्देश्य क्या है? जीवन के उद्देश्यों की प्राप्ति के मानक क्या है? इन सभी को निर्धारित करने वाले सिद्धांतों को हम दार्शनिक चिंतन की कोटी में रख

सकते हैं। दर्शन वस्तुतः एक ऐसे चिंतन को कहा जाता है जहाँ मनुष्य अपनी उन्नति के साथ-साथ जीवमात्र के कल्याण की भी इच्छा रखता है। हम अपने जीवन के उद्देश्यों के विमर्श तथा उसे उत्तरोत्तर उन्नत बनाने के लिए किये जाने वाले विचार को भी दर्शन कह सकते हैं। अतः जब हम समाज दर्शन के स्वरूप की बात करते हैं तो उसमें समाज दर्शन का कैसा स्वरूप होना चाहिए यह विचार करना अत्यंत आवश्यक है । प्राचीन काल से ही मनुष्य को अपने संम्पूर्ण जीवनकाल में पुरुषार्थ-चतुष्टय का अनुसरण करते हुए आगे बढ़ना होता है जहां क्रमशः धर्म,अर्थ,काम,मोक्ष चार पुरुषार्थ कहें गए हैं। इन्हीं चार पुरुषार्थों के अंदर प्रत्येक मनुष्य के जीवन की इहलौकिक व पारलौकिक उन्नति का मूलमंत्र सन्निहित है। श्रीमद्भगवतगीता के आलोक में भी समाज दर्शन के अंतर्गत पुरुषार्थ-चतुष्टय के आधार पर सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति का निर्देशन किया गया है। अतः समाज का सबसे महत्त्वपूर्ण मूलमंत्र यदि कोई है तो वह धर्म है। धर्म ही मानव कल्याण अथवा समाज कल्याण की पहली सारणी है। धर्म के बिना व्यक्ति अन्य पुरुषार्थों की उपलब्धि कथमपि प्राप्त नहीं कर सकता । अतः जब हम श्रीमद्भगवतगीता के प्रथम और अंतिम शब्द को देखते है तो उन दोनों शब्दों में एक ही संदेश दिया गया है "धर्म" व "कुरु" अतः महर्षि वेदव्यास अथवा भगवान श्रीकृष्ण का प्रथम व अंतिम संदेश वह यही है कि मनुष्य को सर्वदा धर्म करते रहना चाहिए अतः समाज के लिए विषाद से मोक्ष तक की यात्रा का सर्व सुलभ साधन यदि श्रीमद्भगवतगीता में कहा गया है तो वह धर्माचरण ही है श्रीमद्भागवत महापुराण में आया है-

धर्मव्यतिक्रमो ह्यस्य समाजस्य ध्रुवं भवेत् ।
यत्राधर्मः समुत्तिष्ठेन्न स्थेयं तत्र कर्हिचित् ॥ [ii]

यदि धर्म का पालन होगा तो सामाजिक दृढ़ता स्वाभाविक बढ़ेगी यदि धर्म को प्रश्रय दिया जाएगा तो वहाँ कुछ भी स्थिर नहीं होगा। अतः सतत धर्म का पालन करना ही चाहिए जो श्रीभगवद्गीता का प्रथम उद्देश्य है। द्वितीय पुरुषार्थ की दृष्टि से श्रीमद्भगवद्गीता में जो सामाजिक सिद्धांत प्राप्त होते हैं वे सूक्ष्म अथवा स्थूल रूप से उपनिबद्ध है क्योंकि अर्थ अर्थात् विषय प्रयोजन कारण। संसार में प्रत्येक व्यक्ति का जीवन का सामूहिक व व्यक्तिगत दृष्टि से जो प्रयोजन है वह मोक्ष ही है अतः मोक्ष पर अपनी दृष्टि केंद्रित करते हुए ही जीवन में व्यापार करना अथवा व्यवहार करना अर्थ कहलाता है । यही जीवन का एकमात्र विषय है। यदि हम धन के अर्थ में भी अर्थ को ग्रहण करते हैं तो श्रीमद्भगवद्गीता से श्रेष्ठ कोई धन है ही नहीं । एक ऐसा धन जो व्यक्ति की तृष्णा को समाप्त करने की शक्ति रखता है। सांसारिक धन से व्यक्ति की प्रवृत्ति जहां भोग विलास की ओर उन्मुख होती है वही श्रीमद्भगवद्गीता रूपी अमूल्यनिधि समाज के लिए एक ऐसा धन है जिससे व्यक्ति की सम्पूर्ण तृष्णा का समन होता है तथा मनुष्य सच्चिदानन्द की अनुभूति प्राप्त करता है। वही काम आदि विलासों से मुक्त रहकर अनन्य भाव से मोक्ष तुल्य ईश्वर मे आसक्ति ही काम है इन पुरुषार्थों का पालन ही मोक्ष तक की यात्रा की संपूर्णता है। क्योंकि यह निश्चित है की बुद्धि के अनुसार ही हमारी पुरुषार्थों में रुचि बढ़ेगी यदि हम

सात्विक भाव से पुरुषार्थ सिद्धि के विषय में प्रवृत्त होंगे तो हमें निश्चित ही मोक्ष अथवा ध्रुव आनंद की अनुभूति होगी,यदि हम तामसिक अथवा राजसिक बुद्धि से पुरुषार्थों में प्रवृत्त होंगे तो हम निश्चित ही अपने लक्ष्य से भटक जाएंगे जिससे कि हमारा सामाजिक सामरस्य भिन्न होगा।

यया तु धर्मकामार्थान् धृत्या धारयतेऽर्जुन।
प्रसङ्गेन फलाकाङ्क्षी धृतिः सा पार्थ राजसी।।[iii]

व्यक्तिगत स्वार्थ व्यक्ति को अहंकार की ओर धकेलता है अहंकार व्यक्ति को तथाकथित श्रेष्ठता के भाव की ओर प्रेरित करता है, यही श्रेष्ठता का भाव व्यक्ति को समाज से भिन्न कर देता है। अतः हमें सात्विक बुद्धि के द्वारा अपने उद्देश्यों की पूर्ति करनी चाहिए।

धृत्या यया धारयते मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः।
योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी।।[iv]

अतः समाज दर्शन के अंतर्गत पुरुषार्थ चतुष्टय की यह भावना सामाजिक सामरस्य की ओर व्यक्ति को प्रेरित करती है एक ऐसा सामाजिक सामरस्य जो निहित निःस्वार्थ भावना से प्रत्येक व्यक्ति के कल्याण की आकांक्षा तथा पीड़ित व्यक्ति के प्रति उदार भाव रखते हुए उसकी पीड़ा को दूर करने की प्रेरणा से ओत-प्रोत है। यहां पीड़ित अर्जुन है, तथा उसकी पीड़ा को दूर करने वाले स्वयं श्रीकृष्ण है। समाज में आज भी ऐसे अराजक और शक्ति संपन्न लोग हमें दिखायी देते हैं जो स्वार्थवश व अपनी महत्त्वकांक्षाओ की पूर्ति के लिये लोगों का दमन करते है किन्तु ऐसे शक्तिशाली लोगों से बचाने अथवा उन्हे धर्मसम्मत मार्ग दिखाकर धर्म युक्त व्यवहार की और प्रेरित करने वाले कृष्ण ही है। समाज का प्रमुख उद्देश्य भी यही है कि अच्छे लोगों का कल्याण हो तथा अधर्मियों को उनसे बचाकर धर्म की स्थापना की जा सके। और अधर्म से लोगों को बचाकर धर्म की स्थापना करना ही कृष्णत्व कहा गया है संपूर्ण गीता के कलेवर में विषाद से मुक्ति,सांसारिक भावनाओं से मुक्ति और असामाजिक तत्व जो कुछ विद्यमान है उन सभी से मुक्ति का संदेश निहित है इसलिए गीता में प्रथम अध्याय का नाम विषाद योग है। विषाद व्यक्ति के जीवन में काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सरता से आता है । श्रीकृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हुए कहते हैं कि -

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप।।[v]

तो वह क्लीबत्व कहीं न कहीं मनुष्य के इन षड् विकारों अथवा दोषों की ओर उन्मुख होने को ही कहा गया है इन्हीं उन्मुखताओ से मनुष्य देहानुरागी लोभी मोह में फंस जाता है, वह कर्तव्यनिष्ठ होने में अथवा दैहिकमोह में इतना आबद्ध हो जाता है कि उसे एक ऐसी आत्मप्रेरणा की आवश्यकता होती है जो उसे साधिकार यह समझा सके कि वह अपने क्लीबत्व को छोड़कर तथा शरीर को अनित्य मानकर इसका

मोह छोड़ दे तथा आत्मा को अजर व अमर मानते हुए संसार मे यथोचित व्यवहार करें। ऐसा भाव मनुष्य को आत्मभाव की ओर प्रेरित करता है और यह आत्मभाव प्रत्येक मनुष्य के अंदर साधुता की भावना संस्थापित करता है, यह साधुता ही मनुष्य को योगी तथा कर्तव्यनिष्ठ बनाते हुए धर्म के मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करती है ।

अगर सामाजिक जीवन की दृष्टि से देखे तो आज हमें एक ऐसा समाज प्राप्त है जो कहीं न कहीं संवेदनहीन है। रहीमदास का एक दोहा प्रचलित है-

रहिमन निज मन की बिथा, मन ही राखो गोय।
सुनि अठिलैहैं लोग सब, बाँटि न लैहैं कोय॥[vi]

अर्थात् यदि हम अपने विषाद अथवा अपनी पीड़ा को अपने समाज में इसलिए व्यक्त करेंगे कि वह कम हो जाए तो यह संभावना भी असंभव ही प्रतीत होती है क्योंकि हम अपनी व्यथा को जितना लोक में बाटेंगे वहां लोगों के बीच में वह हास्य का विषय बनती ही चली जाएगी इसलिए श्रीमद्भगवतगीता का यही संदेश है कि हम अपनी व्यथा अथवा विषाद को अपने इष्ट को सुनाए। वह इष्ट हमारी स्वयं की प्रज्ञा भी हो सकती है। अतः वह चेतना आत्मा अथवा श्रीकृष्ण भी हो सकती है और हम परिणाम पाएंगे कि वह विषाद भी एक योग बन जाएगा जब विषाद योग बन जाएगा तो हमारा उस पर निरोध अथवा नियंत्रण स्वाभाविक ही रहेगा। और हम स्वतः ही आनंदानुभूति करेंगे।

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः।।[vii]

के भाव को भी समाहित करता है मनोवैज्ञानिक रूप से यह आत्मा हमारी प्रेरणास्रोत अथवा प्रेरक है। मन, बुद्धि,अहंकार आदि इन्द्रियां प्रेरणा प्राप्त करती हैं। इसलिए इन्द्रियों की श्रेष्ठता तथा श्रेष्ठतम चेतना अथवा आत्मतत्त्व का महत्व गीता में निगदित है-

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः।।[viii]

जो श्रेष्ठतम है वह आत्मा है और यह आत्मा हमें अथवा हमारे मन को एवं इन्द्रियों को बलवान बनाती है, मनोविज्ञान की भाषा में सहानुभूति अथवा संवेदना को दो कोटियों में बांटा गया है सिंपैथी तथा एंपैथी । सिंपैथी अथवा मनुष्य कमजोर के प्रति सहायता भाव से संवेदना प्रकट करता है वही एंपैथी में मनुष्य सहायता के भाव से कमजोर को बलवान बनाकर उसे सक्षम व स्वयं लड़ने के लिए अथवा आत्मोद्धार की प्रेरणा देता है। श्रीकृष्ण अर्जुन को सांसारिक झंझावात से बचाने के लिए उसे स्वयं बलवान होने की प्रेरणा देते हैं, उसे सामजिक व्यवहार मे प्रगाढ बनाते है। यह एक ऐसा निराकरण है जो ध्रुव है जो मनुष्य को चिरकाल तक आत्मानुलंबन सिखाता है।

उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः।।[ix]
यदि जीव अपना कल्याण कर सकता है तो वह स्वयं के बल पर स्वयं का ही कल्याण कर सकता है और यह आत्मकल्याण की भावना समाज में समानता की भावना में मनुष्य को आबद्ध कर ही देती है। एक ऐसी भावना जो मनुष्य को मनुष्य के सम्मान के लिए प्रेरित करती है और यही मनुष्य की सभ्यता भी है। वस्तुतः सही अर्थों में सभ्य लोगों के समूह को समाज कहा जाता है और समाज निर्माण में श्रीमद्भगवद्गीता का अतुलनीय योगदान है इसलिए जीवन के हर संकट का हल हमे इस ग्रन्थ से प्राप्त हो ही जाता है।

श्रीमद्भगवतगीता सर्वकाल प्रासंगिक ग्रंथ है। जो मानव निर्माण से समाज निर्माण की व्यवस्था को सुव्यवस्थित तरीके से बनाए रखने की प्रेरणा देता है। यह वर्णाश्रम धर्म व्यवस्था की बात करता है तो सभी वर्णों को स्वतंत्र रूप से व्यवहार करने की प्रेरणा भी देता है।

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परंतप।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः।।[x]
श्रीमद्भगवतगीता मे समाज के प्रत्येक वर्ण को गुण व स्वभाव के अनुसार प्रविभक्त किया गया है-

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम्।।[xi]
अतः प्रत्येक व्यक्ति के जीवन की स्वतंत्रता उसके आत्मानुलंबन पर आधारित है। अतः प्रत्येक व्यक्ति को यह अधिकार दिया गया है कि वह अपने स्वभाव अथवा गुण के अनुसार किसी भी कार्य में प्रयुक्त हो सकता है।ठीक उसी प्रकार जैसे कि किसी भी प्रकार का विकल्प न होने पर भी व्यक्ति में अकर्मण्यता भाव विद्यमान न रहे। इसलिए श्री कृष्ण ने यह भी कहा है कि वहां उसे जन्म से प्राप्त कर्म कर लेना चाहिए।

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत्।
सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः।।[xii]
यद्यपि सभी कर्मों में कुछ ना कुछ दोष विद्यमान है इसलिए वह सहज कर्म जो हमें जन्मना प्राप्त हुआ है उसे त्यागना नहीं चाहिए। यह हमारी सामाजिक व्यवस्था सुदृढ़ बनाए रखने का अन्यतम उदाहरण है। कृष्ण कहते हैं कि जैसे अग्नि में धुआं विद्यमान है ठीक वैसे ही संसार के प्रत्येक कार्य में दोष विद्यमान है। यदि मनुष्य अन्य किसी कार्य में असमर्थ है तो उसे अपना सहज कार्य नहीं छोड़ना चाहिए इससे प्रत्येक व्यक्ति के कार्य को सम्मान की भावना से देखा जाएगा। व्यक्ति का व्यक्ति के प्रति हीनता का भाव घटेगा और सामाजिक उन्नति बढ़ेगी। अपने कार्य के प्रति यदि संशय रहेगा तो कहीं न कहीं समाज

कल्याण में बाधा अवश्य आएगी,इसलिए सभी प्राणियों के कल्याण की इच्छा समाज को करनी चाहिए तथा किसी भी कार्य के प्रति संशय नहीं होना चाहिए क्योंकि जब तक मनुष्य के भीतर का संशय नहीं मिटेगा तब तक समाज कल्याण संभव नहीं है।

छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः।।[xiii]

ऐसे लोगों के सारे कल्मष अर्थात् दोष नष्ट हो जाते हैं और वे परमानंद अथवा ब्रह्म निर्वाण को प्राप्त करते हैं। इस प्रकार समाज के प्रत्येक अंगों का कार्तिक दिग्दर्शन श्रीमद्भगवद्गीता में विद्यमान है और जिसका मूल उद्देश्य है समाज के प्रत्येक व्यक्ति का कल्याण इसलिए सर्वभूतहिते रताः का मूल मंत्र इसमें विद्यमान है।

सन्दर्भ ग्रन्थसूची :-

- श्रीमद्भागवत महापुराण, खंड-1,2, हिन्दी अनुवाद सहित गीताप्रेस गोरखपुर, खण्ड-1 प्रथम संस्करण 1 जनवरी 2005
- श्री मद्भभागवतगीता, हिन्दी अनुवाद सहित, गीताप्रेस गोरखपुर
- रहिमन ग्रंथावली - रहीम, प्रकाशक: वाणी प्रकाशन,प्रकाशन वर्ष: 1985
- समाज दर्शन- राजीव बंसल,एस.बी.पी.डी. पब्लिकेशन,आगरा
- भारतीय दर्शन की रूपरेखा- प्रो. हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, मोतीलाल बनारसी दास पब्लिकेशन त्रयोदश संस्करण 2018
- धर्मशास्त्र का इतिहास-पांडुरंग वामन काणे,उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ 1963-1973
- भारतीय-दर्शनम्, वाचस्पति गैरोला (सं.), लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज,2009
- भाषाविज्ञान एवं भाषाविज्ञान,द्विवेदी डॉ.कपिलदेव (सं.), यूनिवर्सिटी प्रेस, वाराणसी,2019
- वैदिक-साहित्य एवं संस्कृति,द्विवेदी डॉ.कपिलदेव (सं.), यूनिवर्सिटी प्रेस, वाराणसी,2017
- संस्कृत प्रतियोगिता प्रकाश, दीपक संजय (सं.), चौखम्बा प्रतिष्ठान, नई दिल्ली,2019

संस्कृत साहित्य का इतिहास, शरमन डॉ. उ

[i] गीतामहात्म्य श्लोक 6

[ii] श्रीमद्भागवत 10.44.9

[iii] श्रीमद्भगवद्गीता 18.34

[iv] श्रीमद्भगवद्गीता 18.33

[v] श्रीमद्भगवद्गीता 2.3

[vi] रहिमन ग्रंथावली – पृ. सं. 95

[vii] श्रीमद्भगवद्गीता 6.5

[viii] श्रीमद्भगवद्गीता 3.42

[ix] श्रीमद्भगवद्गीता 6.5

[x] श्रीमद्भगवतगीता 18.41

[xi] श्रीमद्भगवतगीता 4.13

[xii] श्रीमद्भगवतगीता 18.48

[xiii] श्रीमद्भगवतगीता 5.25